

साक्षात्कार

अंक : 472-473, अप्रैल-मई 2019

A large, stylized handwritten signature in black ink, likely belonging to Namvar Singh, is positioned in the center of the page. The signature is fluid and expressive, with a long horizontal stroke extending from the left.

नामवर सिंह

(28 जुलाई 1926 - 19 फरवरी 2019)

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

अप्रैल-मई 2019

संयुक्तांक : 472-473

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा,
भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 : 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए

email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

web : <http://sahityaacademymyp.com>

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए	:	₹ 250
संस्थाओं के लिए	:	₹ 300
आजीवन	:	₹ 3,000

सदस्यता-वेबसाइट से on line भी प्राप्त कर सकते हैं।

यह अंक : ₹ 50

समस्त बैंक ड्रॉप्ट/मनीआर्डर 'निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल' के नाम स्वीकार्य होंगे।

प्रसार एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : साकिर रहमान, फोन 0755 : 2554782

मुख पृष्ठ : अमरजीत तिलक

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम

शब्द संयोजन : हरीश तिवारी, राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रम

प्रस्तावना // 05

सम्पादकीय // 08

व्याख्यान // 11

बुद्धि का अव्यक्त सरोवर नामवर सिंह

हमारी साहित्यिक परम्परा और भारतीयता की सही पहचान नामवर सिंह

कुटुम्ब // 33

पिता जी इस लोक के महावृक्ष तूबा थे विजय प्रकाश सिंह

वह 'भूत' जो नामवर ईसान था संध्या सिंह

नामवर के निमित्त // 44

वह निष्फ सदी का किस्सा है... विश्वनाथ त्रिपाठी से राजीव रंजन गिरि एवम् अटल तिवारी की बातचीत

नामवर सिंह ने आलोचना को रचनाशीलता के बराबर स्थान दिलाया अशोक वाजपेयी से वैभव सिंह की बातचीत

पुनर्पाठ // 69

कविता के नये प्रतिमान अर्थात् 'फलम्' का 'अलम्' होना राधावल्लभ त्रिपाठी

होते कविताई में भी नामवर ओम भारती

कविता के नये प्रतिमान : प्रासंगिकता के निकष ज्योतिष जोशी

'कहानी : नयी कहानी' वाले नामवर सिंह संजीव कुमार

नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि सियाराम शर्मा

हिन्दी साहित्य की दूसरी परम्परा अवधेश मिश्र

संवाद परम्परा के अन्तिम आलोचक अजय वर्मा

नामवर सिंह की कहानी आलोचना : कविता की आँख से कहानी को देखना नीरज खरे

वाद-विवाद के दरमियाँ संवाद की जगह आशुतोष

हिन्दी आलोचना का वैचारिक और संवादी दस्तावेज प्रभाकर सिंह

नामवर सिंह का छायावाद श्रीप्रकाश शुक्ल

नामवर सिंह की छायावाद और हिन्दी आलोचना सुधीर रंजन सिंह

नामवर सिंह की किताब 'छायावाद' अभितेश कुमार

आशुतोष

वाद-विवाद के दरमियाँ संवाद की जगह

किसी भी भाषा और उसके साहित्य के विकास एवम् विकास की गति बहुत कुछ उसमें उठने वाले वाद-विवाद से प्रभावित होती है। हिन्दी साहित्य इसका अपवाद नहीं है। “जिस भाषा का जन्म ही विवाद से हुआ हो, या कहा जाय कि विवाद-भरे वातावरण में हुआ हो, उसमें विवादों की कमी नहीं होनी चाहिए। जाहिर है, हिन्दी में यह कमी नहीं है।” (हिन्दी साहित्य का मौखिक इतिहास, खण्ड-तीन, पृ. 10)

साहित्य समाज-सापेक्ष कार्वाई है। इसका सम्बन्ध समाज से है, जिसकी एक गतिविधि के रूप में उसका प्रादुर्भाव होता है और सामाजिक उठा-पटक का अक्स शायद सबसे ज्यादा साहित्य में ही नज़र आता है। “विवाद शायद दुनिया की हर भाषा और उसके वाङ्मय का हिस्सा है और भिन्न भाषाओं के सन्दर्भ में रेखांकित भी किये जा सकते हैं। कुछ विवाद सभी भाषाओं के साहित्य में समान रूप से पाये जाते हैं और कुछ विवाद किसी भाषा विशेष की अपनी निजता से सम्बद्ध होते हैं। मिसाल के तौर पर अश्लीलता का विवाद शायद दुनिया के सभी साहित्यों में किसी-न-किसी रूप में पाया जाता है। लेकिन हिन्दी-उर्दू का विवाद खड़ी बोली हिन्दी का अपना विवाद है।” (वही, पृ. 13)

हिन्दी के प्राथमिक विवादों में पहला भाषा सम्बन्धी (हिन्दी-उर्दू) विवाद है और दूसरा सत्ता बनाम साहित्यकार सम्बन्धी विवाद है। इन दोनों विवादों की अनुगूँज बहुत गहरी है। महात्मा बुद्ध ने संस्कृत की बजाय पालि में अपने उपदेश दिया, इसे भाषायी वर्चस्ववाद के खिलाफ एक सचेत कार्वाई के रूप में लिया जाना चाहिए। साथ ही इसे भाषा को जनता से जोड़ने की सार्थक कोशिश के रूप में भी देखा जा सकता है। कबीर कहते हैं कि ‘संस्कीरत है कूप जल भाषा बहता नीर’, तो वहीं तुलसी निश्चयात्मक स्वर में उद्घोष करते हैं कि “का भाखा का संस्कृत, भाव चाहिए साँच, काम तो आवे कामरी का लै करे कुमाच”। ये सारे उदाहरण भाषा को जन से जोड़ने के सार्थक प्रयास के साथ दूर अतीत में चल रही भाषा दृष्टि की बानगी भी हैं, जो बाद में आकर बड़े पैमाने पर विमर्श का रूप अख्तियार करती हैं। ठीक इसी तरह सत्ता बनाम साहित्यकार के विवाद को देख सकते हैं। संस्कृत बनाम पालि का मामला या फिर संस्कृत बनाम देसी भाषाओं का मामला हो, उसका सम्बन्ध कहीं-न-कहीं साहित्यकार की अपनी सामाजिक-राजनैतिक दृष्टि से भी जुड़ा है। बुद्ध ने पालि भाषा के चयन के साथ तत्कालीन राजसत्ता समर्थित भाषा के बरअक्स एक जन भाषा को महत्व दिया। संस्कृत के बजाय अवधी, ब्रज या सधुक्कड़ी भाषा में रचना करना तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक वर्चस्व का विरोध है। कुम्भनदास अपने निष्कर्षों में बेबाक हैं-‘संतन को कहा सीकरी सौँ काम’। तुलसी संस्कृत के विद्वान होने के बावजूद संस्कृत की ‘कुमाच’ छोड़कर भाषा की ‘कामरी’ प्रयोग करते हैं; कामरी पर उनको पक्का यकीन है ‘तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार’ इसी यकीन का परिणाम है। ‘परिमल’ में राज्याश्रय वाली

बहस, परसाई के 'मुक्तधारा' में 'सत्ता और साहित्यकार का सम्बन्ध' विषयक बहस तथा 80 के बाद के दशक में पुरस्कारों के सन्दर्भ में सत्ता और साहित्यकार के मुद्दे पर छिड़ी बहसों को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। इसी क्रम में बीसवीं सदी के पहले दो-तीन दशकों के महत्वपूर्ण विवादों को भी समझा जा सकता है जो हिन्दी साहित्य में सोच-समझ के म्यार को विकसित करने में सहायक हैं-जैसे, बालमुकुन्द गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी के बीच 'अनस्थिरता' शब्द सम्बन्धी विवाद। प्रसाद और प्रेमचन्द के बीच का 'गड़े मुर्दे उखाड़ने वाला' विवाद। 20वीं सदी के प्रथम चार दशकों में छायावाद और निराला-पन्त के बीच का विवाद। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास 'चाकलेट' पर बनारसीदास चतुर्वेदी और उग्र के बीच का विवाद जिसका पटाक्षेप गाँधी जी ने लेखक का पक्ष लेते हुए किया था। विवाद चाहे जैसे भी हों वे सब हिन्दी साहित्य में संवाद की स्थिति को मजबूती प्रदान करते थे। बातचीत और बहस के बीच से ही हिन्दी का आज का स्वरूप निर्मित हुआ है। एक खास बात यह कि ये सारे विवाद लेखकों-रचनाकारों के बीच के संवाद को बहाल रखते थे। विवादों में विचार और मत को लेकर बहस होती थी। उनमें व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं रहता था। उनमें व्यक्ति से ज्यादा विषय या बिन्दु का महत्व रहता था। "अनस्थिरता वाला तीखी बहस के बाद द्विवेदी जी से पूछा गया कि हिन्दी अच्छी कौन लिखता है तो उन्होंने बेखटके कहा-बालमुकुन्द गुप्त।" (वही, पृ. 27)

साहित्यिक विवादों में व्यक्ति-व्यक्ति के बीच कटुता नहीं आती थी। रामस्वरूप चतुर्वेदी की टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि "उस समय ही लगभग यह प्रगतिशील लेखक संघ बनाम परिमल का एक द्वैत चला हुआ था और नामवर जी बनारस से प्रायः आया करते थे। वे भी हमारे साथ घुमते थे। दोस्ती उनकी परिमल के मित्रों से थी, विचारधारा उनकी प्रगतिशील लेखक संघ के साथ थी। मिलते थे, बैठते थे, बहस होती थी।" (वही, पृ. 27)

हिन्दी के साहित्यिक विवादों का यह स्वरूप बाद के दिनों में बदलने लगा। साहित्यिक विवाद व्यक्तिगत राग-द्वेष में बदलने लगे। क्योंकि ऐसे विवाद साहित्य पर नहीं लेखक-रचनाकार के व्यक्तित्व पर केन्द्रित होने लगे हैं। किन्तु बाद के दिनों में हिन्दी साहित्य को जिन विवादों ने सर्वाधिक संवादी बनाया उनमें रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे दो बड़े आलोचकों के साहित्यिक विवाद हैं। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि इन दोनों आलोचकों के विवाद व्यक्तिगत न होकर साहित्य केन्द्रित थे, जिनसे हिन्दी साहित्य में बहस और संवाद की परम्परा समृद्ध हुई।

नामवर सिंह का लेखन और चिन्तन व्यापक है। वे समय-समय पर साहित्य के अन्यान्य मुद्दों पर अपनी दो टूक के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उन्होंने बहुत कुछ ऐसा लिखा और बोला, जिससे साहित्य जगत में या तो पूर्व से चले आ रहे किसी विवाद का शमन हुआ या फिर कोई नया विवाद उठ खड़ा हुआ। यहाँ मुख्य रूप से नामवर सिंह के साथ रामविलास शर्मा के बीच 'कविता के नये प्रतिमान', 'इतिहास की शव साधना' और 'नवजागरण' सम्बन्धित जो वैचारिक संघर्ष हैं, उसकी चर्चा अपेक्षित है।

रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के बीच के विवादों के सन्दर्भ में अजय तिवारी की टिप्पणी है कि "उनके युद्ध कौशल की विशेषता यह है कि वे कब रामविलास जी को जासूस, ऐय्यार, जड़, पुनरुत्थानवादी सिद्ध कर देंगे, कब 'केवल जलती मशाल', यह कोई नहीं जान सकता।" (तिवारी अजय, वसुधा-51 पृ. 174)

इस टिप्पणी में रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के विवाद में नामवर सिंह द्वारा बार-बार निष्कर्ष बदलने का स्पष्ट संकेत हैं। परिवर्तन तो रामविलास शर्मा में भी होता है किन्तु दोनों योद्धाओं के युद्ध कौशल में अन्तर यह है कि नामवर सिंह मोर्चा वहीं रखते हैं किन्तु निष्कर्ष बदल देते हैं और रामविलास शर्मा मोर्चा बदलते हैं, निष्कर्ष वहीं रखते हैं। पर यह बदलाव जितनी तेजी से नामवर सिंह में होता है उस तरह रामविलास शर्मा में नहीं।

यह देखने वाली बात है कि नामवर सिंह और रामविलास शर्मा में परिवर्तन सिर्फ कौशल और रणनीति के तहत ही नहीं होता है बल्कि इन दोनों के अन्दर लगातार समृद्ध होते जा रहे ज्ञान-चिन्तन के भी कारण होता है। नामवर सिंह की रामविलास शर्मा की कई स्थापनाओं से व्यापक असहमति रही है, इसके बावजूद रामविलास शर्मा का जो उल्लेखनीय मूल्यांकन हुआ है उसमें नामवर सिंह का महत्वपूर्ण योगदान है।

नामवर सिंह ने रामविलास शर्मा को वाद-विवाद-संवाद में अपना गुरु माना है। इन दोनों आलोचकों की बहस की शुरुआत नयी कविता के लिए शास्त्र बनाने से हुई। दरअसल लक्ष्मीकान्त वर्मा और विजयदेव नारायण साही के बीच इस बात की बहस चली कि 'नयी कविता के प्रतिमान' हों या 'कविता के नये प्रतिमान' हों। नामवर सिंह ने हस्तक्षेप किया और 'कविता के नये प्रतिमान' नामक किताब लिखी। साथ ही लक्ष्मीकान्त वर्मा की पुस्तक 'नयी कविता के प्रतिमान' को 'दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास' बताते हुए खारिज कर दिया। 'कविता के नये प्रतिमान' से असहमति प्रकट करते हुए रामविलास शर्मा ने 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' लिखा। बहस नये ढंग से शुरू हुई। बहस की पहल करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा कि "पुरानी कविता के उपमान मैले हो गये थे। नयी कविता में नये उपमानों की जरूरत हुई। कवि प्रेमिका के लिए नया उपमान ढूँढ लाया-कलंगी बाजरे की। कुछ आलोचकों का विचार है कि कविता के प्रतिमान भी मैले हो गये हैं। नयी कविता के लिए नये प्रतिमान चाहिए। अर्थात् हिन्दी आलोचना में बाजरे की कलंगी है नामवर सिंह की पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान'।" (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 56)

इस व्यंग्य में रामविलास शर्मा की तर्कप्रणाली कार्य कर रही है। दरअसल रामविलास शर्मा को कविता के नये प्रतिमानों से नहीं उन प्रतिमानों के पहचान और उनके निर्धारण की प्रक्रिया से असहमति है। नामवर सिंह 'कविता के नये प्रतिमान' में अंग्रेजी कविता के प्रतिमानों के आधार पर 'विसंगति', 'विडम्बना', 'तनाव' आदि को स्थिर करते हैं और कविता में 'रस' की अवधारणा को खारिज करते हैं। किन्तु उनके इस प्रतिमान निर्धारण में एकरूपता नहीं है। छायावाद से अलग नयी कविता की पहचान, काव्य में अनुभूति की स्थिति, वस्तुगत सत्य और आत्मगत सत्य, रस आदि पर व्यापक चर्चा करते हुए नामवर सिंह इसी पुस्तक में आखिरकार रामचन्द्र शुक्ल तक पहुँचते हैं और रस के प्रतिमानत्व को स्वीकार करते हुए काव्य के अर्थ-मीमांसा की उपयोगिता पर विचार करते हैं। 'कविता के नये प्रतिमान' "पुस्तक के पहले खण्ड में कविता की प्रकृति, नये प्रतिमानों की आवश्यकता और रस के प्रतिमान की प्रसंगानुकूलता पर विचार करते हुए छायावादोत्तर कविता के मूल्यांकन की समस्या उभारी गयी है और 'उर्वशी', 'कामायनी' तथा 'तारसप्तक' को लेकर सातवें दशक में जो चर्चाएँ हिन्दी में हुईं, उनके मुद्दों की विस्तृत पड़ताल की गयी है। इस क्रम में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना के जो पहलू खुले, उनके आलोक में लेखक ने पुस्तक के दूसरे खण्ड में सात अध्याय दिये हैं-काव्य भाषा और सृजनशीलता,

काव्य बिम्ब और सपाटबयानी, काव्य संरचना : प्रगीतात्मक और नाटकीयता, विसंगति और बिडम्बना, अनुभूति की जटिलता और तनाव, ईमानदारी और प्रामाणिक अनुभूति तथा परिवेश और मूल्य।” (कुमार अजित, वर्तमान साहित्य (1), 2002, पृ. 235)

‘कविता के नये प्रतिमान’ के केन्द्र में कवि मुक्तिबोध हैं। नामवर सिंह के समस्त विवेचन और कविता के नये प्रतिमानों के निर्धारण की कुल उपलब्धि पर टिप्पणी करते हुए रामविलास शर्मा कहते हैं कि “जो भी हो, नये प्रतिमानों की स्थापना के लिए आचार्य शुक्ल का महत्व असन्दिग्ध है। अपनी अर्ध-मीमांसा में सबसे पहले वह ‘भाव’ की ही व्याख्या करते हैं और यह व्याख्या इतनी सटीक है कि एक क्षण को सारे नये-पुराने प्रतिमान व्यर्थ जान पड़ते हैं।” (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ. 63)

अपने इस निष्कर्ष को वे नामवर सिंह के मत से पुष्ट करते हैं। जिसमें नामवर सिंह ने लिखा है कि “आचार्य शुक्ल का भाव अपनी प्रकृति से ही इतना ‘गूढ़ संश्लेष’ है कि वह बेखटके तुलसीदास, निराला और मुक्तिबोध जैसे समर्थ कवियों की जटिल से जटिल और भाव गम्भीर कविता के विश्लेषण के औजार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।” (वही, पृ. 63) नामवर सिंह की पुस्तक में मत की स्थिरता का संकट है। कहीं वे रस को स्वीकार नहीं करते तो उपर्युक्त कथन में रस की प्रतिमानता और आचार्य शुक्ल की रस सम्बन्धी अवधारणा को महत्वपूर्ण बताते हैं। रामविलास शर्मा इस पूरी विश्लेषण पद्धति का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि “नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कविता में जिस तनाव की प्रशंसा की है, वह पुस्तक में सर्वत्र विद्यमान है। प्रतिमानों के बीच तनाव है; कभी यह ज्यादा तन गया, कभी वह। नाटकीयता भी कम नहीं है। पात्रों में प्रमुख भूमिका नगेन्द्र की है। कहीं टक्कर शुक्ल जी से है तो कहीं अज्ञेय से। तारसप्तक के कवियों को भिड़ा दिया है मुक्तिबोध से। टी.एस.इलियट की ठन गयी है डोनाल्ड डेवी से। ... आप पता ही लगाते रह जायेंगे कि नये प्रतिमान कौन है, कहाँ हैं। ... अब आप स्वीकार करेंगे, ‘कविता के नये प्रतिमान’ पुस्तक हिन्दी आलोचना में बाजरे की कलंगी है।” (वही, पृ. 63) इस आखिरी वाक्य तक आते-आते रामविलास शर्मा ‘कविता के नये प्रतिमान’ की स्थापनाओं को खारिज कर देते हैं। रामविलास शर्मा चाहे व्यंग्य और परिहास का प्रयोग करें या फिर प्रहार करें, उनमें तर्क की गम्भीरता कम नहीं होती। विषय के अनुरूप ही शैली अपनाते हैं किन्तु दृष्टि, चिन्तन और नैतिक बोध नहीं बदलते और न ही भाषा असंयत होती है। किन्तु रामविलास शर्मा की इन टिप्पणियों पर नामवर सिंह की ओर से लिखित में कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होने के कारण इस विवाद का हिन्दी काव्य आलोचना में बहुत कुछ जोड़ते हुए शमन हुआ।

‘आलोचना’ पत्रिका के सम्पादकीय में एक फिर रामविलास शर्मा और नामवर सिंह का विवाद खड़ा हुआ। उसी क्रम में नामवर सिंह ने अपने प्रसिद्ध आलेख ‘इतिहास की शव साधना’ में रामविलास शर्मा के समग्र लेखन का मूल्यांकन प्रस्तुत किया। यह सर्व विदित है कि अपने जीवन के उत्तरार्ध में रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद पर बहुत काम किया। रामविलास शर्मा के इस वेद-प्रेम पर टिप्पणी करते हुए नामवर सिंह अपने उक्त लेख में उन्हें इतिहास के शव का साधक बताया। दरअसल ‘शव-साधना’ के इस विवाद की जड़ सुदूर अतीत में हैं। वह सब कुछ नामवर सिंह को याद है। वे उस विवाद का उल्लेख नीलाभ के सम्पादन में प्रकाशित ‘हिन्दी साहित्य का मौखिक इतिहास’ में करते हैं कि “एक (गोष्ठी) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में हुई थी और प्रगतिशील लेखकों की थी, ... उस गोष्ठी की

कुछ एक बातें याद हैं। उसमें रामविलास जी और हजारीप्रसाद द्विवेदी एक ही मंच से, अध्यक्ष तो थे रामविलास जी, उद्घाटन किया था उस सत्र का हजारी प्रसाद द्विवेदी ने, और सम्भवतः कहीं लिखा भी हो मैंने, द्विवेदी जी ने 'साहित्य एक शव साधना', कि साहित्य तो एक शव की साधना के समान है और शव के ऊपर बैठ करके साधक अपनी साधना से शव को जागृत करता है और उसकी पीठ पर बैठा हुआ है तो उसका मुँह साधक की ओर उलट कर हो जाता है और फिर कहता है कि जो माँगो, वह देंगे। तो अपने रूपक की भाषा में द्विवेदी जी ने बड़ा तीव्र भाषण दिया। रामविलासजी ने अध्यक्ष की हैसियत से उस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इस साधना में सबसे बड़ा खतरा यह है कि शव के स्थान पर साधक का मुँह उलट जाता है और वह वर्तमान से हट कर पीछे की ओर देखने लगता है इसलिए ऐसी साधना, जो साधक के मुँह को उलट दे और अतीत की ओर देखने लगे तो इस साधना में खतरा है, आप सोच सकते हैं कि इसका क्या असर पड़ा होगा।" (हि.सा.का मौ. इ.-2, पृ. 117-118)

द्विवेदी जी के भाषण पर रामविलास शर्मा की इस टिप्पणी का असर हुआ "द्विवेदी जी चुप। सभा में छत-फाड़ ठहाका।" जब रामविलास शर्मा ऋग्वेद पर काम करते हुए भारतीय नवजागरण की शुरुआत ऋग्वेद से बताते हैं। तो इस पर टिप्पणी करते हुए नामवर सिंह कहते हैं "दरअसल 'नवजागरण' का वह स्वर्णमृग है जो रामविलास जी को वैदिक अरण्य में खींच ले गया। और लोक की सीता का अपहरण हो गया। विधि की बिडम्बना। अनहोनी हो गयी। दुष्यन्त तो वे थे नहीं, जो कोई अन्य आकर्षण होता! यहाँ तो बस हरण ही हरण है और निश्चय ही वह हिरण भी! अब इसे मृगया की माया कहिए या शिकार का शौक! जहाँ न ले जाए!" (सिंह नामवर, इतिहास की शव साधना, वसुधा-51, पृ. 97)

दरअसल नामवर सिंह को नवजागरण से परहेज नहीं है, शिकायत सिर्फ यह है डॉ. शर्मा का वर्तमान से पीछे जाकर ऋग्वेद में उसे ढूँढ़ना। साधक का मुँह पलट जाना शायद इसी को कहते होंगे। नामवर सिंह कहते हैं, "अब रामविलास जी चुप हैं और इतिहास अट्टहास कर रहा है, क्या वही सवाल रामविलास जी ने खुद अपने-आपसे कभी पूछा? क्यों पूछते! उनकी दिलचस्पी तो शव-परीक्षा में थी, शव-साधना में नहीं।" (वही, पृ.109) इसके साथ ही नामवर सिंह रामविलास शर्मा की नवजागरण सम्बन्धी व्याख्या पर आश्चर्य करते हैं। "आश्चर्य सिर्फ इस बात पर है कि भारतीय नवजागरणों की इस लम्बी परम्परा में बुद्ध का कहीं जिक्र नहीं है। साफ है कि ऋग्वेद से शुरू होने वाले वैदिक नवजागरण की धारा से बुद्ध बाहर हैं और उनके साथ ही पूरी श्रमण परम्परा भी बहिष्कृत है। इसी तरह आधुनिक हिन्दी नवजागरण का चौथा चरण भी निराला के साथ स्थिर हो जाता है। इस क्रम में अखिल भारतीय प्रगतिशील आन्दोलन का जिक्र न पाकर थोड़ा आश्चर्य भी होता है-खासतौर से रामविलास शर्मा की मार्क्सवादी और प्रगतिशील छवि को स्मरण करते हुए!" (सिंह नामवर, इतिहास की शव साधना, वसुधा-51, पृ. 98)

नामवर सिंह रामविलास शर्मा के नवजागरण की व्याख्या भी बताते हैं "एक ऐसा नवजागरण है जिसमें बुद्ध की बुद्धिवादी अथवा विवेकवादी चिन्तन-पद्धति के लिए कोई जगह नहीं है।.....इस निषेध-वृत्ति के बावजूद रामविलास जी के नवजागरण की विशेषता यह है कि उसमें काफी विविधता है। हर नवजागरण का चरित्र अलग है। नाम एक, रूप भिन्न! 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' की अभिनव व्याख्या। अद्भुत अनेकान्तवाद! जिस 'एक' से नवजागरण 'अनेक' हुआ है वह है ऋग्वेद। भारतीय नवजागरण का मूल स्रोत! चाहें तो मूलाधार भी कह लें। कहना न होगा कि नवजागरण की इस परिकल्पना

में एक प्रकार की बुनियादपरस्ती है, जिसका प्रचलित नाम 'फंडामेंटलिज्म' है। रामविलास जी के इस परिकल्पना के प्रेरणा-स्रोत हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती!" (वही, पृ.98-99)

रामविलास शर्मा की नवजागरण सम्बन्धी व्याख्या पर नामवर सिंह की इस टिप्पणी में उनकी तल्खी देखी जा सकती है। रामविलास शर्मा ने भारत के विकास, भारतीय नवजागरण आदि के उत्थान में यूरोप के योगदान को अस्वीकार किया। इस बहुप्रचलित धारणा कि अंग्रेजों ने भारत को आधुनिकता की दौड़ में शामिल किया, को रामविलास शर्मा ने अपने तथ्यात्मक एवं तार्किक विश्लेषण के द्वारा खारिज किया। इस पर नामवर सिंह की टिप्पणी यह है कि "यह एक प्रकार से यूरोपीय विद्वानों के कुख्यात 'ओरिएंटलिज्म' के जवाब में दूसरा 'अन्धराष्ट्रवादी प्राच्यवाद' है। भारतीय प्राच्यवाद की यह प्रतिक्रिया उतनी ही विकृत है जितनी पाश्चात्य प्राच्यवाद की आक्रामक क्रिया दूषित थी। रामविलास जी यह आक्रामक प्राच्यवाद दयानन्द के आर्यवाद से ज्यादा खतरनाक है क्योंकि यह आज संघ परिवार के फासिस्ट इरादों को एक हथियार प्रदान कर रहा है-बन्दर के हाथ उस्तरा देने से भी खतरनाक।" (वही, पृ.100) अपनी इस बेलाग टिप्पणी के साथ नामवर सिंह ने रामविलास शर्मा की नवजागरण सम्बन्धी मान्यताओं को पूरे तार्किक ढंग से प्रश्नांकित किया। रामविलास शर्मा ने जिन तथ्यों के आधार पर भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा के जाग्रत चेतना और उपलब्धियों को रेखांकित करने का प्रयत्न किया उसे नामवर सिंह 'अन्ध प्राच्यवाद' और संघ के विचारों को पोषित करने वाला बताते हैं। इसीलिए नामवर सिंह रामविलास शर्मा को इतिहास का शव-साधक कहते हैं। नामवर सिंह के लेख 'इतिहास की शव-साधना' के प्रतिउत्तर में मुरली मनोहर प्रसाद सिंह ने एक लेख 'चलइ जोंक जल वक्र गति' लिखा जो वसुधा-51 में प्रकाशित है। यह लेख नामवर सिंह और रामविलास शर्मा सम्बन्धी विवादों का एक नया पक्ष प्रस्तुत करता है। मुरली मनोहर प्रसाद सिंह 'इतिहास की शव-साधना' में वर्णित नामवर सिंह के दृष्टिकोण पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "जो लोग मार्क्सवाद को एक शास्त्र मानते हैं, संघर्ष का पथ प्रदर्शक नहीं, वे लोग बहस के केन्द्र बिन्दु में प्रासंगिक होने पर भी साम्राज्यवाद का कभी उल्लेख नहीं करते। नामवर सिंह के साथ भी यही स्थिति है। साम्राज्यवाद बनाम भारत के उत्पीड़ित जनगण नामवर जी की विवेचना के केन्द्र में यदि अनुपस्थित हैं, तो इसके भी कारण ढूँढने चाहिए।" (चलइ जोंक जल वक्र गति, पृ. 238)

साथ ही मुरली मनोहर प्रसाद सिंह सवाल खड़ा करते हैं कि "औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध दमित-पीड़ित जनगण के संघर्षों और उनकी सांस्कृतिक क्रियाशीलता में नवजागरण के उद्भव और विकास के उत्स देखना आखिर 'फंडामेंटलिज्म' कैसे हैं? यूरोप के प्रभाव को मान लें तो हम प्रगतिशील, वरना हम 'अंधराष्ट्रवादी'? यह कैसी तर्क व्यवस्था है और आज किसे मदद पहुँचा सकती है। संघी लोगों का यही कहना है कि जितने भी जनतन्त्र-प्रेमी या मार्क्सवादी हैं-सबके सब यूरोप के प्रेमी और पैरोकार हैं।" (वही, पृ. 241)

नवजागरण सम्बन्धी समग्र विवेचन में रामविलास शर्मा की नजर सचेत जन प्रतिरोध पर केन्द्रित रहता है। हिन्दी नवजागरण का मूल चरित्र साम्राज्यवाद के खिलाफ जनप्रतिरोध खड़ा करना है। रामविलास शर्मा की पूरी कोशिश जनता के इसी प्रतिरोध को रेखांकित करने की रही है। 1857 का संग्राम उसी जन प्रतिरोध का व्यावहारिक परिणति है। 1857 के मात्र चार साल पहले 1853 में कार्ल मार्क्स ने भारत में

अंग्रेजों की भूमिका के सन्दर्भ में लिखा था कि “इंग्लैंड ने तो भारतीय समाज का सारे का सारा ढाँचा तोड़ डाला, और उसके नवनिर्माण के कोई लक्षण अभी तक नजर नहीं आते। इस भाँति एक तरफ तो भारतीय जनता की पुरानी दुनिया खो गयी है और दूसरी तरफ नयी दुनिया मिली नहीं है, जिससे उसकी वर्तमान दुःखपूर्ण स्थिति और भी करुण हो जाती है और ब्रिटिश शासन के नीचे भारत अपनी सभी प्राचीन परम्पराओं, अपने समूचे पिछले इतिहास से कट जाता है।” (वही, पृ. 239) मार्क्स की यह टिप्पणी तथाकथित भद्र कहे जानी वाली ब्रिटिश सरकार की हकीकत कह रही है। पूँजीवादी दुष्चक्र में फँस कर भारत की क्या स्थिति थी इसे उक्त टिप्पणी के मार्फत समझा जा सकता है। किन्तु “पूँजीवादी सभ्यता का यह पाखण्ड नामवर जी के लिए स्पष्ट बेशक न हो, मार्क्स की आँखों के सामने वह निरावृत्त हो गया था। औपनिवेशिक उत्पीड़न की बर्बरता के विरुद्ध जन-जागृति और व्यापक जन-संघर्षों की लामबन्दी ही ‘नवजागरण’ के उद्भव को समझने-समझाने वाली आवश्यक कुंजी है।” (वही, पृ. 239) नामवर सिंह के लेख ‘इतिहास की शव-साधना’ से उपजे सम्पूर्ण विवाद पर मुरली मनोहर प्रसाद की टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि “हिन्दी के भाग्यान्वेषी बुद्धिजीवियों का एक समुदाय ऐसा भी है जो इतिहास, भाषाविज्ञान, पुरातत्व और धर्मशास्त्र के क्षेत्र में मार्क्सवाद की दुहाई देकर रामविलास शर्मा को शत्रु घोषित करने में लगा है। नामवर जी इस अभियान के शिखर पुरुष हैं। दूसरी तरफ उनकी बरसी के मौके पर विरसे की पगड़ी भी बाँधे रखना चाहते हैं।” (वही, पृ. 241) मुरली मनोहर प्रसाद की इस टिप्पणी में निहित उत्साह को कुछ देर के लिए स्थगित कर दिया जाय तो हिन्दी साहित्य के इन दोनों योद्धाओं के रण कौशल का सौन्दर्य देखा जा सकता है। नामवर सिंह ने रामविलास शर्मा के कई स्थापनाओं से असहमति प्रकट की है किन्तु उनकी असहमति में किसी भी स्तर पर रामविलास शर्मा के प्रति अनादर का भाव नहीं है। रामविलास शर्मा के अवदान का मूल्यांकन करते नामवर सिंह के ‘केवल जलती मशाल’ और ‘हिन्दी का दान वह अभिमान वह’ जैसे लेख इस बात के उदाहरण हैं। नामवर सिंह और रामविलास शर्मा के इन साहित्यिक विवादों का उपलब्धि यह है कि इनसे हिन्दी आलोचना का चरम वैभव प्रकट होता है, साथ ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में वाद-विवाद के माध्यम से संवाद की नयी राहें फूटती हैं।

नामवर सिंह और रामविलास शर्मा के आलोचना-कर्म के विकास में एक-दूसरे की उपस्थिति असंदिग्ध है। इन दोनों के वैचारिक संघर्षों में इनके रचना-कर्म की विशिष्टता और उपलब्धि निखर कर आती है। दोनों अपने आलोचना कर्म में एक-दूसरे से जितने प्रभावित हैं उतने ही असहमत भी। प्रभाव और असहमति की इस प्रक्रिया में इन दोनों ने एक-दूसरे की ज्ञान-गरिमा का श्रेष्ठतम ढंग से मूल्यांकन भी किया है।